षष्ठ अध्याय

'राधाचरितम्' महाकाव्य का काव्य सौन्दर्य

(1) रस विवेचन

(2) गुण विवेचन

(3) दोष विवेचन

(4) प्रकृतिचित्रण

षष्ठ–अध्याय

'राधाचरितम्' महाकाव्य का काव्य सौन्दर्य

1. रस विवेचन

लौकिक और साहित्यिक जगत् को अत्यन्त परिचित तथा प्रतिष्ठित शब्द है–रस। यह अत्यन्त व्यापक है। किसी भी आस्वाद्य वस्तु की अनुभूति के लिए रस शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। किसी भी पदार्थ, वस्तु अथवा दृश्य से जो आनन्द पहुँचता है, उस अनुभूति को रस संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। मुख्यतः 'रस' शब्द का प्रयोग लौकिक और साहित्यिक दो रूपों में प्रसिद्ध है।

लौकिक रस प्रायः हमारे ज्ञानेन्द्रिय रसना का विषय होते हैं, जो हमारी शारीरिक आवश्यकताओं के पूरक है, किन्तु साहित्यिक रस हमारे हृदय को आनन्दमय करते हैं। साहित्य में रसानुभूति का तात्पर्य 'काव्यानन्द' से है। व्याकरण के अनुसार रस की व्युत्पत्ति इस प्रकार है–"रस्यते इति रसः" अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाता है और जो स्नेहन करता है। अतः जिससे मन को द्रवीभाव के साथ स्वाद मिले वही रस है। यह रस ही काव्य पुरुष की आत्मा है। अलंकार, रीति, छन्द, चित्रण आदि तो इसके बाह्य उपकरण हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ तो रसात्मक वाक्य को ही काव्य मानते हैं–"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"।[1] वस्तुतः काव्य शास्त्रीय क्षेत्र में जितना समादर इस तत्व को मिला उतना किसी अन्य काव्य तत्व को नहीं मिला।

भरत को रस तत्त्व का प्रवर्त्तक माना जाता है उन्होंने इसे नाटक के अनिवार्य धर्म के रूप में स्वीकार किया।

अलंकारवादी आचार्यों भामह, दण्डी एवं उद्भट् ने यद्यपि रस भावादि को रसवद् आदि अलंकार नाम से अभिहित किया तथापि उन्होंने अपने दृष्टिकोण से इसे समादर भी

---

1. साहित्यदर्पण 1/3

प्रदान किया। भामह और दण्डी ने इसे महाकाव्य के लिए एक आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार किया। भामह के अनुसार कटु औषधि के समान कोई भी शास्त्र चर्चा रस के संयोग से मधुर बन जाती है।[1]

दण्डी का माधुर्यगुण रसवत् ही है तथा इसकी यह रसवत्ता माधुर्यों के समान सहृदयों को प्रमत्त बना देती है।[2] रूद्रट ने भी अनेक स्थलों पर रस की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। भामह और दण्डी के समान उन्होंने भी रस को महाकाव्य के लिए आवश्यक तत्त्व माना है। उनके अनुसार काव्य को यथेष्ट रसमय बनाना चाहिए नहीं तो इससे अरूचि एवं भय होगा।[3]

ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने रसध्वनि, वस्तुध्वनि एवं अलंकार ध्वनि में से 'रस ध्वनि' को उत्तम स्वीकार किया है। उनके अनुसार तो नीरस काव्य कवि का महान् अपशब्द रूप है। ऐसे नीरस काव्य की रचना की अपेक्षा तो उसका अकवि रहना अतिश्रेयस्कर है।[4] आचार्य विश्वनाथ ने तो रस को जीवनधायक एवं साख्य कहकर स्पष्टतः काव्य की आत्मा माना है।[5] रस की निष्पत्ति का सर्वप्रथम उल्लेख भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में किया था। उनके अनुसार "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।"[6] अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

आचार्यों ने रस के चार अवयव माने हैं–

(1) स्थायी भाव, (2) विभाव, (3) अनुभाव एवं (4) सञ्चारिभाव।

मम्मट के अनुसार, "लोक में रति आदि स्थायी भाव के जो कारण, कार्य और सहकारी कारण होते हैं वे नाटक में या काव्य में क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते हैं।"[7]

---

1. काव्यालंकार 5/3
2. काव्यादर्श 1/51
3. काव्यालंकार 16/5, 12/2
4. ध्वन्यालोक पृष्ठ सं. 13, 217
5. सा.द., पृष्ठ सं. 23
6. ना.शा., पृष्ठ सं. 620
7. का. प्र. 4/27-28

सामान्यतः रस के इन अवयवों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) आश्रय पक्ष, (2) आलम्बन पक्ष।

काव्य में जिस पात्र के हृदय में रति आदि कोई संचारी भाव व्यञ्जित होता है वह पात्र उस भाव का आश्रय कहा जाता है। हृदय में उस भाव को अनुभूति के समय आश्रय की जो चेष्टायें होती हैं उन्हीं को अनुभाव कहते हैं तथा स्थायी भाव में "उन्मग्न—निमग्न" होने वाले अन्य सहभावों को सञ्चारी भाव। आश्रय पक्ष में तीनों को अन्तर्भाव हो जाता है। आलम्बन पक्ष में विभाव के दोनों पक्षों आलम्बन तथा उद्दीपन आ जाते हैं। आश्रय का स्थायी भाव जिस पात्र या वस्तु के प्रति उद्बुद्ध हुआ है वह उसका आलम्बन है तथा उस पात्र या वस्तु की अवस्था, चेष्टा या अन्य परिस्थितियाँ, जिनके कारण आश्रय में वह भाव विशेष जागृत होता है, उद्दीपन के अन्तर्गत गिनी जाती है। आलम्बन सजीव या निर्जीव दोनों प्रकार के हो सकते हैं। रस में आलम्बन सबसे प्रधान होता है। यदि आलम्बन का चित्रण सफल हो गया तो रसोद्बोध निश्चित हो जाता है।

वस्तुतः जिसको लोक-हृदय की पहचान हो, जो अपनी अनुभूति का साधारणीकरण कर सकता हो, जिसकी अनुभूतियाँ विशेष रूप से सजग हो, जिसकी भाव-शक्ति विशेष रूप से समृद्ध हो, ऐसा ही कवि भाषा का भावमय प्रयोग करते हुए साधारणीकरण द्वारा पाठकों के हृदय में रस का उद्बोध कराता है।

महाकाव्य के लक्षण प्रसंग में कहा गया है कि शृंगार, वीर तथा शान्त रस में किसी एक रस को अङ्गी एवं अन्य रसों की अंगरूप से निबद्ध करना चाहिए।

शृंगार वीर शान्तानामेकोङ्गी रस इष्यते।

अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वेनाटक सन्धयः।।

नामतः आभास होता है कि राधाचरितम् महाकाव्य एक शृंगार प्रधान काव्य होगा, जिसमें राधा एवं कृष्ण के संयोग अथवा विप्रलम्भ शृंगार का चित्रण होगा, किन्तु गहनता से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वियोग शृंगार से प्रारम्भ हुए इस महाकाव्य की शान्त रस में परिणति होती है। राधाचरितम् महाकाव्योदधि में नवरस की उत्ताल तरङ्गे

हिलोरे लेती हैं और अवसरानुकूल एक वीचि दूसरी वीचि को अभिभूत कर प्रधान हो जाती है अथवा स्वयं अभिभूत हो दूसरी वीचे को स्थान प्रदान करती है। शान्त रस के अजस्र प्रवाह में सभी रस तरंगों के समान अठखेलियाँ करते हैं।

22 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य के प्रथम **'चिन्तन'** सर्ग में **'वियोग'** अनुभव करती राधा व्रज की दशा के विषय में चिन्तन करती है। **उद्बोधन, सम्बोधन, क्रिया, कृतज्ञता** सर्ग में उसका **व्रजोत्थान के क्रियान्वयन** का चित्रण है। 'स्मृति' सर्ग में **वियोग श्रृंगार** प्रदीप्त होता है। **'संवाद'** सर्ग में **कृष्णजन्यवियोग श्रृंगार** प्रभावी होता है। **'व्रजदर्शन'** सर्ग में भक्ति तथा **वात्सल्य** रस का मधुर प्रवाह गतिशील होता है। **प्रियदर्शन** सर्ग में पुनः विप्रलम्भ एवं संयोग रस मुखरित हो उठते हैं, **'भूयोवियोग'** सर्ग **विप्रलम्भ श्रृंगार** का आभार है, जो कालिदास के **'मेघदूत'** का स्मरण कराता है। **'ऐश्वर्य'** सर्ग में पुनः **शान्त रस** स्थापित होता है जो अन्तपर्यन्त प्रवाहित होता रहता है।

इस प्रकार 'राधाचरितम्' महाकाव्य का **अङ्गी रस शान्त रस** है जो विप्रलम्भ एवं संयोग श्रृंगार, भक्ति, वात्सल्य आदि रसों से परिवृद्ध एवं पुष्ट होता हुआ महाकाव्य की कसौटी पर खरा उतरता है।

अङ्गी रस–

शान्त रस राधाचरितम् में महाकाव्यीय नियमों के अनुसार एक अंगी रस है। यह शान्त रस है। शान्त रस का स्थायी भाव शम है। इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के व्यक्ति होते हैं। अनित्यता अथवा दुःखमयता आदि के कारण समस्त सांसारिक विषयों की निस्सारता का ज्ञान अथवा साक्षात् परमात्मस्वरूप का ज्ञान ही इसका आलम्बन विभाव है। पवित्र आश्रम, तीर्थ, साधु संगति आदि उद्दीपन विभाव है। रोमांचादि अनुभाव तथा निर्वेद हर्ष, स्मृति, मति, दयादि व्यभिचारी रूप में कथित है।[1] काव्यानुशासन में भी शम को शान्त रस का स्थायी भाव कहा गया है और शम का अभिप्राय तृष्णाक्षय से लिया है।[2] नाट्यदर्पणकार ने भी शम

1. सा.द. 3/245-248, रसगंगाधर प्रथमानन, पृष्ठ सं. 168
2. काव्यानुशासन 2-17

को शान्त रस का स्थायी भाव माना है। शान्त रस के समर्थक आचार्यों ने मोक्ष रूप परम पुरुषार्थ की साधक शम नामक चित्तवृत्ति को कवि और पात्र के प्रभावशील व्यापारों द्वारा आस्वाद्य होकर रसत्व की स्थिति में पहुँचा हुआ कहा है।

शान्त रस स्थिति–

शान्त रस की स्थिति के विषय में न केवल आधुनिक विद्वानों में किन्तु प्राचीन विद्वानों में भी मतभेद पाया जाता है। इस मतभेद का मुख्य आधार भरतमुनि का यह 'अष्टौ नाटये रसाः स्मृताः' (6–16) श्लोक ही है। उसी को यहाँ काव्यप्रकाशकार ने भी रसों की संख्या का निरूपण करते हुए उद्धृत किया है। भरत के इसी वचन के आधार पर प्राचीन आचार्यों में महाकवि कालिदास, अमरसिंह, भामह और दण्डी आदि ने भी नाटक के आठा ही रसों का उल्लेख किया है तथा शान्तरस का प्रतिपादन किया है। इसके विपरीत उद्भट आनन्दवर्धन तथा अभिनवगुप्त ने स्पष्ट रूप से शान्त रस का प्रतिपादन किया है। सबसे पहले भरत नाट्यशास्त्र के टीकाकार उद्भट ने अपने 'काव्यालंकारसंग्रह' नामक ग्रन्थ में की है। उसके बाद आनन्दवर्धन तथा अभिनवगुप्त आदि ने उनका समर्थन किया है। उद्भट के पहले शान्त रस की कोई सत्ता नहीं मानी जाती थी।

प्राचीन आचार्यों में शान्त रस के सबसे प्रधान विरोधी धनञ्जय और धनिक है। दशरूपक तथा उसकी टीका में शान्त रस का खण्डन किया गया है। उनके मतानुसार नाट्य में आठ रस होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि नाट्य में शान्त रस होता ही नहीं है। शान्तरस को नाट्य में स्थान न दिये जाने के कारण उसका अनभिनेयत्व है। अभिनयप्रधान नाट्य में शान्त रस को स्थान नहीं दिया जाता है। इस विषय में 'दशरूपक' के टीकाकार ने विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है–

शममपि केचित् प्राहुः पुष्टिर्नाटयेषु नैतस्य।
निर्वेदादिरताद्रुप्यादस्थायी स्वदत्ते कथम्।
वैरस्यायैव तत्पोषस्तेनाष्टौ स्थायिनो मताः।।

'इह शान्तरसं' जीयमाना वैरस्यमावहन्ति।[1]

अभिनवभारती में अभिनवगुप्त ने लगभग सौ पृष्ठों में अत्यन्त विस्तार के साथ शान्त रस का विवेचन किया है। आनन्दवर्धन ने भी महाभारत को शान्त रस प्रधान माना है। काव्यप्रकाशकार ने नौ रस माने हैं—निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः। जिसमें नौवा रस शान्त है।

लक्षण—शमो निरीहावस्थायामात्मविश्रामजं सुखम्।[2]

वैराग्य दशा में आत्मरति से होने वाला आनन्द ही निर्वेद या शम है और वही शान्त रस रूप से परिणत होता है। मिथ्यात्व रूप से भाव्यमान् जगत् ही शान्त रस का आलम्बन है, पवित्र आश्रम, तीर्थ, महापुरुष संग आदि इसके उद्दीपन हैं, रोमाञ्च आदि अनुभाव, स्मृति, मति, जीवदया आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं।

ममापि कर्माथ न चावशिष्यते,

ग्रामे गृहे वा व्रजमण्डले क्वचित्।

ममापि वासोऽत्र तदल्पकालिको,

न कोऽपि लोके वसतीह सर्वदा।।[3]

प्रस्तुत उदाहरण में राधा आश्रय है। समस्त कार्यों के पूर्ण हो जाने पर जगत् में मित्थ्यात्व की प्रतीति आलम्बन है। कार्यसमाप्ति, उद्दीपन है। व्रजवासियों को कृष्णभक्ति का संदेश देना आदि अनुभाव है तथा मति, घृति तथा हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है।

अतः यहाँ सहृदय सामाजिक में शमप्रकृतिक शान्त रस की अभिव्यक्ति होती है।

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण—

---

1. दशरूपक 4/35, 36
2. सा.द. 3/180
3. राधा. 21/158, 159

इत्थं स्वव्रजवासिनोऽखिलजनान् सन्दिश्य वीतव्यथा

श्रीराधा व्रजभूमिकल्पलतिका गेहे वसन्ती पितुः।

श्रद्धाभावपुरस्सरं प्रतिदिनं सम्पूज्यमाना जनैः

श्रीकृष्णागमनप्रतीक्षणमनाः कालं निनायात्मनः।।[1]

में भी शान्त रस की अभिव्यक्ति होती है।

इसी प्रकार ऐश्वर्य सर्ग में महाराज उग्रसेन द्वारा सहृदयों को शान्त रस की अनुभूति होती है।

श्रुत्वा च भावांस्तव सारगर्भान्, सम्बन्धमोहोऽप्याखिलो विनष्टः।

राधा सनाथे जगतां च नाथे, कृष्णेऽद्य जातो भगवत्त्वबोधः।।[2]

यहाँ राजा उग्रसेन आश्रय है। कंस का मुक्त हो जाना आलम्बन है। सम्बोध मोह का नाश उद्दीपन है। राधायुक्त कृष्ण में भगवत तत्त्व का बोध अनुभाव है तथा मति, धृति, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है। अतः यहाँ शम स्थायी भाव 'शान्त' रस के रूप में परिणत होता है।

इसी प्रकार अन्यत्र भी–

कृष्णे च विष्णौ च शिवे च राजन्, त्वं भेदभावं न कदापि कुर्याः।

गेहे च देहे च भवेन्न रागो, दम्भाव ते स्यान्न च कृष्ण भक्ति।।[3]

केवल मानवजन्य शान्तरस ही नहीं अपितु पशु पक्षी जन्य शान्त भाव भी राधाचरितम् में सर्वत्र अनुभूतिगम्य है।

पश्योद्यहेमाधव! चित्रमाश्रमे, त्यक्तास्ति जीवैः सहजापि वैरिता।

क्षुपा लताश्चात्रभवा महीरूहाः, पुष्प्यन्त्यकालेऽपि फलन्ति साम्प्रतम्।।[4]

---

1. राधा. 21/163
2. वही; 192168
3. वही; 19/197
4. वही; 16/20

अन्यत्र भी—

मृगा मयूरा अपि चाश्रमस्थिताः, बिभ्रत्यहो नाद्य भयस्य भावनाम्।

अमन्द आनन्दरसश्च नूतनोऽ, नुभूयते कोऽपि गिरामगोचरः।।[1]

इस प्रकार यथास्थल आस्वाद्यमान शान्त रस राधाचरितम् के अङ्गी रस के रूप में शोभित होता है।

शृंगार रस—

शृंगार रस की व्युत्पत्ति शृंग और आर शब्दों से मानकर रसमञ्जरीकार भानुदत्त ने कामोद्रेक की वृद्धि या प्राप्ति को शृंगार कहा है।[2] कोश में शृंगार का अर्थ 'नाट्यरससुरतः' दिया है और नाट्यरस का लक्षण बताया है कि पुरुषों की स्त्रियों के प्रति और स्त्रियों की पुरुषों के प्रति संयोग संभोग की जो अभिलाषा है उसी को रतिक्रीड़ा के कारण शृंगार कहा जाता है।[3] साहित्यदर्पणकार ने शृंगार की परिभाषा दी है—शृङ्गं हि मन्यथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः उत्तम प्रकृति प्रायो रसः शृंगार इष्यते।[4]

आनन्दवर्धन ने इसे मधु रस स्वीकार किया है।[5] दशरूपककार ने शृंगार के तीन भेद किये हैं। अयोग, विप्रयोग तथा संयोग। शृंगार के आश्रय नायक नायिका होते हैं तथा आलम्बन भी नायक नायिका ही होते हैं चन्द्र चन्द्रिका उद्दीपन विभाव तथा दर्शन, कटाक्ष, प्रस्वेद, रोमांच, अश्रु आदि व्यापार अनुभाव कहे जाते हैं।

राधाचरितम् में शृंगार रस शान्त रस के परिपोषक के रूप में ही आया है। यहाँ पर प्राधान्ये वियोग शृंगार का ही वर्णन मिलता है किन्तु संयोग शृंगार भी उपलब्ध होता है।

उदाहरण—

विलोकमाने तव देहवैभवं, नेत्रे इमे मेऽद्य च तृप्तिमाप्नुतः।

श्रोत्रे च वाचस्तव शृण्वती सखे, सुखानुभूतिं कुरुतोऽभिवाञ्छिताम्।। 16/46

---

1. राधा. 16/23
2. रसमञ्जरी पृष्ठ सं. 179-179
3. शब्दकल्पद्रुम भा. 5, पृष्ठ सं. 183
4. सा.द. तृतीय परिच्छेद—183
5. ध्वन्या द्वि. उद्योत कारिका—7

प्रस्तुत उदाहरण में कृष्ण आश्रय है, राधा आलम्बन है, राधा के सेवकों द्वारा विनम्रतापूर्वक रोका जाना, वातावरण पर राधा का प्रभाव और कृष्ण की पत्नियों का आश्चर्यचकित एवं प्रभावित होना आदि उद्दीपन विभाव है कृष्ण के नेत्रों का तृप्त होना कानो का सुख अनुभव करना आदि अनुभाव है। हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है। रति स्थायी भाव है। इस प्रकार इन सबके संयोग से सहृदय सामाजिक नायिका विषयक नायक निष्ठ रति का रसास्वादन करते हैं।

चिराद् वियुक्तेन निजप्रियेण, कृष्णेन सार्धं निजधामयात्राम्।

विधास्यमानां हृदि भावयन्ती, प्रायोऽन्वभूत्सा पुलकं स्वदेहे।। 22/2

इस उदाहरण में राधा आश्रय है, कृष्ण आलम्बन है, दीर्घकाल के वियोग के बाद कृष्ण से मिलना उद्दीपन है। हृदय में विचार और शरीर में रोमाञ्च अनुभव है। औत्सुक्य, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है। अतः नायक विषयक, नायिका निष्ठ रति के उद्रेक से सहृदय सामाजिक को संयोग शृंगार की रसानुभूति होती है।

प्रकृति के उद्दीपन रूप बसन्त ऋतु के आगमन से व्रज के स्त्री-पुरुषों में भी शृंगार का उदय दृष्टिगत होता है।

लुलोप मानो यदि मानिनीनां, ननाश नृणामपि संयमस्तत्।

कामप्रभावो भगवानिवास्ति, करोति नारी-नरयोर्न भेदम्।। 6/21

तदाभवज्जागरिता रिरंसा, यथायथं मानुषदेहभाजाम्।

तेषां दृढ़ा संयमशृंखला सा, छिन्ना क्षणेऽभूत्सुममालिकेव।। 6/33

स्मृति सर्ग में प्रायः शृंगार रस प्रधान पद्यों का बाहुल्य है।[1] यही शृंगार रति भाव के रूप में प्राप्त होता है। पशु-पक्षियों में भी दृष्टिगोचर होता है।

शुकाश्शुकीनां च पिकाः पिकीना, मारेभिरे चित्तमुदं विधातुम्।

प्रियाद्वितीयाः कृतनीडवासा, गार्हस्थ्यदीक्षाव्रतिनो बभूवुः।। 6/27

इस प्रकार अन्यत्र भी शृंगार रस एवं रति भाव के उदाहरण द्रष्टव्य हैं।[2]

1. राधा. 6/34-43
2. वही; 6/25-29, 32-34

विप्रलम्भ शृंगार–

वियोग की अवस्था में प्रेमी एवं प्रेमिकाओं के हृदय में मानसिक मिलन को प्रबल इच्छा रहती है। वियोगावस्था का वैशिष्ट्य ऐन्द्रिकता की न्यूनता में ही है, वियोग की ज्वालाओं में तपकर भावनाएँ निष्कलुष और वासनायुक्त हो जाती हैं। वियोग में ही प्रेम प्रकृष्टता प्राप्त करता है। प्रेम की सच्ची परख वियोग में ही होती है।[1] कतिपय सहृदयों की मान्यता है कि वियोगकाल में प्रेम में तीव्रता नहीं रहती लेकिन कविकुलगुरू कालिदास इसके पक्षपाती नहीं। उनकी मान्यता है कि संयोग की अपेक्षा वियोगकाल में ही प्रेम उपचित होकर राशिभूत हो जाता है।[2]

राधाचरितम् महाकाव्य में शान्त रस के बाद विप्रलम्भ शृंगार का ही बाहुल्य है। जो राधा एवं कृष्ण दोनों की ही वियोगजन्य दशा को अभिव्यंजित करता है। महाकाव्य का प्रारम्भ ही कृष्ण वियोग में लीन राधा के परिचय से होता है।

दूरस्थितत्वाद वसुदेवसूनोः, तस्य स्मृतिस्तामनिशं बबाधे।

चिराच्य सा कृष्ण वियोग विद्धा, चिन्ता-चिता-वह्निवृता तदाभूत्।। 6/51

स्वामेकलां चेतसि चिन्तयन्त्याः, तस्यास्तदा कृष्णवियोगवह्नौ।

तुषाग्निराशाविव वारिजातं, पापच्यमानं हृदयं बभूव।। 6/67

उपर्युक्त उदाहरण में राधा आश्रय है, कृष्ण आलम्बन है वसन्त-ऋतु का आगमन उद्दीपन है कृष्ण का स्मरण करना चित्त का व्यथित होना अनुभाव है। स्मरण, चिन्ता शौक आदि सञ्चारी भाव इन सबसे परिपुष्ट हुआ रति नाम का स्थायी भाव सहृदय सामाजिकों को विप्रलम्भ शृंगार का रसास्वादन कराता है। वियोग का यही भाव कृष्ण के हृदय को भी व्यथित करता है।

चिन्तामग्नो विकलकरणो बाल्यसख्या वियुक्तस्–

तिष्ठन्नास्ते गिरिवरतटे कृष्णकायः करीन्द्रः।

---

1. ज्यों-ज्यों विसम वियोग की अनल ज्वाल अधिकाय।
   त्यों-त्यों तिय की देह में नेह उठत उफनाय।
2. स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगात्।
   इष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशि मतिराम भवन्ति।–मेघदूत, उत्तरेघ, 52

स्मारं स्मारं सहजमतुलं तत्कृतं स्नेहदानं

भावाधिक्यात्सजलनयनस्तत्कृते बोभवीति।। 15/4

यहाँ कृष्ण आश्रय है, राधा आलम्बन है, राधा द्वारा चरणरज भेजना उससे कृष्ण का रोगमुक्त होना आदि उद्दीपन विभाव, इन्द्रियों का विकल होना, राधा का स्मरण करना अश्रुपात अनुभाव है। चिन्ता स्मरण और विकलता व्यभिचारी भाव है। रति स्थायी भाव है और उद्रेक के कारण सहृदय सामाजिकों के वियोग शृंगारास्वादन का हेतु है। इसी प्रकार वियोगजन्य रति का भाव पशु-पक्षियों में भी दृष्टिगोचर होता है–

गावो न वत्सा न तृणं चरन्ति, त्वामाह्वयन्तीव च रम्भमाणाः।

त्वद्-वेषभूषामपि धारयित्वा, तत्प्रीतये नैव भवन्ति गोपाः।। 1/27

इस प्रकार अन्यत्र भी विप्रलम्भ शृंगार के उदाहरण द्रष्टव्य हैं।[1] **चिन्तन, स्मृति, भूयोवियोग** और **प्रतीक्षा सर्ग** तो **विप्रलम्भ शृंगार** के साक्षात् प्रतिबिम्ब हैं।

अद्भुद रस–

आश्चर्यजनक वस्तुओं के दर्शन से अद्भुत रस की उत्पत्ति होती है विस्मय या आश्चर्य स्थायी भाव, अलौकिक वस्तु दर्शन आलम्बन, आश्चर्य वस्तु विवेचना उद्दीपन विभाव, स्तम्भ, स्वेद रोमाञ्च सभ्रम, गद्गद् होना, अनुभाव, वितर्क आवेश, स्मृति, हर्ष आदि सञ्चारी भाव है।[2] राधाचरितम् के संवाद सर्ग में नारद श्रीकृष्ण की लीलाओं की राधा से चर्चा करते हैं। इस स्थल पर अद्भुद् रस की अभिव्यञ्जना होती है–

यजन्तं कुत्रचित्तेषु, भोजयन्तं क्वचिद् द्विजान्।

दोलां क्वाप्यधिरोहन्तं, लालयन्तं शिशून् क्वचित्।। 6/67

इत्थं सर्वेषु सौधेषु, समकालमुपस्थितम्।

अपश्यं वासुदेवं तं सत्वरं सञ्चरन्नहम्।। 6/78

सानन्दविस्मयाविष्टस्, तदीयाद्भुतलीलया।

---

1. राधा. 1/4, 5, 6/48-51, 66-58
2. काव्यालंकार, 15/7

यहाँ पर आश्रय नारद है, आलम्बन कृष्ण है। द्वारिका के भव्य भवनों का वैभव उद्दीपन है। नारद का द्रुतगति से विचरण करना, कृष्ण को सर्वत्र पाना, नेत्र विस्फरण आदि अनुभाव है। औत्सुक्य, हर्ष, विस्मय आदि व्यभिचारी भाव है। इस प्रकार यहाँ अद्‌भुद् रस की अनुभूति होती है।

वात्सल्य रस–

प्राचीन आचार्यों ने वात्सल्य को केवल भाव मात्र ही माना है, किन्तु उसकी चरमोत्कृष्टता के कारण आचार्य विश्वनाथादि वत्सल को रस मानते हैं। इसमें अन्य रसों के चमत्कार से अतिरिक्त प्रकार का ही आनन्द है। इसका जो स्थायी भाव है वह 'वात्सल्य प्रेम है। 'आलम्बन' पुत्र आदि है। यहाँ पुत्रादि की चेष्टाओं में, उनकी विद्या, शूरता दया आदि उद्दीपन विभाव का कार्य करते हैं। आलिङ्गन, अङ्गस्पर्श, शिरश्चुम्बन, सस्नेह वीक्षण, रोमाञ्च, आनन्दाश्रु आदि इसके अनुभाव हैं। इसके व्यभिचारी भावों में अनिष्टाशङ्का हर्ष, गर्व आदि का समावेश है। इसका वर्ण शुभ्र-पीत है और इसके देवता गौरी आदि षोडश मातृचक्र हैं।[1]

पुत्रादि के विषय में अथवा उसी श्रेणी के अन्य प्रिय सम्बन्धी के प्रति जो स्नेह होता है वह वात्सल्य कहा जाता है। राधाचरितम् में वात्सल्य रस का बौछार की भीनी-भीनी खुशबू कृतज्ञता सर्ग में द्रष्टव्य है जब राधा माता यशोदा के महल में पहुँची तो उनके वात्सल्य की सीमा न रही–

माता यशोदा समुपेयुषीममूं, वेलेव वीचिं परिषस्वजे हृदा।

यथा मयूरी मुदमाप मानसे, वर्षागमेनाशु तदागमेन सा।।[2]

माता यशोदा ने राधा के आने पर बड़े स्नेह के साथ उनके सिर पर हाथ फेरा एवं माता कौशल्या के समान कुशल समाचार पूछा।

स्नेहेन राधामुपवेश्य सन्निधौ, निधाय पाणिं च तदीयमूर्धनि।

श्रीराममातेव विदेहनन्दिनीं, पप्रच्छ सा तां कुशलानि वत्सला।। 5/3

---

1. साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, 251-253
2. राधा. 5/2

यहाँ माता यशोदा आश्रय है राधा आलम्बन है। राधा द्वारा व्रज के व्रजवासियों को कृष्ण के वियोग की पीड़ा से उबारना और व्रजोत्थान करना उद्दीपन विभाव है। राधा को समीप बैठाना प्यार से सिर पर हाथ फेरना अनुभाव है। स्नेह, औदार्य, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है। इस प्रकार वत्सल नाम का **स्थायी भाव** वात्सल्य रस के रूप में परिणत हो सहृदयों में वात्सल्य रसानुभूति कराता है।

राधाचरितम् के कृष्ण गुरुजनदर्शन सर्ग में माता देवकी के वात्सल्य भाव का वर्णन है। माता देवकी ने श्रीराधा जी को स्नेहपूर्वक अपने हृदय से लगा लिया और अपने वात्सल्य का जल बरसाते हुए उन्होंने उन्हें बार-बार चूमा। उन्होंने श्रीकृष्ण जी को भी उसी प्रकार अपने हृदय से लगाया और चूमा फिर उन्होंने उन दोनों को अपनी आँखों के सामने ही बैठाया, और उन दोनों की छवि को खूब पिया।[1]

राधाचरितम् के रस विवेचन से स्पष्ट होता है कि डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने महाकाव्य के अनुरूप सहज गति से रस की धाराएँ प्रवाहित की हैं, जिसमें शान्त, विप्रलम्भ श्रृंगार, संयोग श्रृंगार, वात्सल्य तथा अद्भुत रस क्रमशः पूर्वपूर्वतर प्राधान्येन प्रयुक्त है।

2. गुण विवेचन–

"गुणौ भूषयते रूपं" सर्वथा सत्य है। गुणहीन व्यक्ति कुलीन धनाढ्य एवं सुन्दर होते हुए भी समाज में आदर का पात्र नहीं बन पाता, इसी प्रकार गुण रहित काव्य भी। गुण आत्मा का धर्म है यथा औदार्य, वीरता, दयालुता आदि काव्य में माधुर्य आदि गुण काव्यात्मक रस के धर्म हैं। अग्नि पुराण में भी काव्य में गुणों को महत्त्वपूर्ण कहा गया है–

यः काव्ये महती छाया मनुहुणात्यसौ गुणः।[2]

भारतीय आचार्यों ने गुणों को काव्य का आवश्यक अंग माना है। भारतीय साहित्यशास्त्र में गुणों का विवेचन अनेक प्रकार से हुआ है। भट्टोद्भट ने काव्य से इनका सम्बन्ध समवायवृत्ति से माना है। वामन गुणों को काव्य शोभा के कर्ता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। आचार्य दण्डी ने गुणों का सम्बन्ध रीतियों के साथ नियत किया है। इसी आधार

---

1. राधा. 18/80
2. अग्निपुराण, 346/3

पर आचार्य वामन ने "गुण विशिष्ट पद रचना रीति" कहकर रीति का लक्षण दिया है। दण्डी के अनुसार दस शब्द-गुण और दस अर्थ-गुण स्वीकार किये गये हैं, जिनके नाम समान ही हैं—श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य सुकुमारता, अर्थव्यक्ति उदारता, ओज, कान्ति और समाधि।[1] यद्यपि ये गुण भरत द्वारा भी विवेचित हुए थे, परन्तु भरत और दण्डी की कल्पनाओं में मौलिक अन्तर है। भरत इन्हें काव्यार्थ के गुण मानते हैं, जबकि दण्डी काव्य शैली के विशिष्ट गुण कहते हैं। मम्मट ने काव्य में प्रधान रूप से स्थित रस के साथ सदा रहने वाले और रस का उत्कर्ष करने वाले धर्मों को गुण कहा।[2] मम्मट आदि ने माधर्यु, ओज और प्रसाद इन्हीं तीन गुणों को स्वीकार करके इन्हीं में पूर्वोक्त दस गुणों को अन्तर्भावित कर दिया जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। मम्मट का गुण विवेचन ही भारतीय काव्यशास्त्र में अपेक्षाकृत नवीन है। यहीं आधुनिक काव्यशास्त्रियों में समादृत एवं मान्य सिद्धान्त है।

माधुर्य गुण–

आह्लादकत्वं माधुर्य शृङ्गारे द्रुतिकारणम्।
करूणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्।। 8/69
मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू।
आवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा।। 8/74

आनन्दातिरेक से जहाँ चित्त द्रवित हो जाय, वहाँ माधुर्य गुण होता है। माधुर्य गुण की अवस्थिति सामान्यतः संभोग शृंगार में अपरिहार्य होती है तथा क्रमशः विप्रलम्भ, करूण और शान्त में अधिकाधिक होती जाती है। माधुर्य गुण में ह्रस्व अक्षर तथा स्वल्प समास की योजना की जाती है। यह क्षमता आचार्य मम्मट के अनुसार उस रचना में आती है, जिसमें ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर 'क' से लेकर 'म' तक के अक्षर ङ, ण, न, म से युक्त ह्रस्व स्वर और ण, समास का अभाव या अल्प समास के पद आदि की प्रतिष्ठा होती है। 'राधाचरितम्' में विप्रलम्भ शृंगार, शान्त रस का अधिक प्रयोग होने से माधुर्य गुण का सुन्दर प्रयोग किया है। डॉ॰ हरिनारायण दीक्षित ने अनेक पद्यों में ट वर्गीय वर्णों को छोड़कर

1. काव्यालंकारसूत्र 3, 1, 4, 2
2. का.प्र. 8/66

शेष मधुर एवं ह्रस्व वर्णों की योजना कर माधुर्यगुण युक्त पद्यों का ग्रन्थन किया है। शृंगार में माधुर्य गुण का उदाहरण–

तेषां नृणां कृष्णमुखेन्दुचन्द्रिकां, विचिन्वतां तत्र चकोरपक्षिणाम्।

मुग्धेषु नेत्रेषु मनस्सु तत्क्षणं, कृष्णाय जातो ममतोदयो महान्।। 10/33

प्रसंग में अन्य उदाहरण भी दृष्टव्य हैं–

निरानन्दापि सानन्दं, ददती सानन्दं सदा।

राधा मे नित्यमाराध्या, निवासं कुरुते व्रजे।। 7/100

उपर्युक्त पद्य में भाव की कोमलता के साथ वर्णों की योजना की गयी है। वर्ग के पञ्चम अक्षर माधुर्य के सृजन में विशेष सहायक होते हैं।

अल्पेन कालेन नवानवानां, लता–तरुणां हरितावदता।

बभूव शोभा नयनाभिरामा, सुमोन्मुखी प्राणिषु रागहेतुः।। 6/15

उक्त श्लोक 'नवानवानां' में अनुप्रास की छटा माधुर्य का सृजन कर रही है तथा कठोर वर्णों का अभाव और मधुर वर्णों का सद्भाव माधुर्य गुण के संगठन में अत्यधिक सहायक है।

ओज गुण–

दीप्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीर रस स्थिति

वीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च।। 8/69

योग आद्यतृतीयान्यभ्यामन्त्ययोः रेणु तुल्ययोः।

टादि शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि।। 8/75

चित्त के विस्तार रूप दीप्तत्व का नाम ओजस् है ओजो गुणयुक्त रचना में सामाजिक का हृदय प्रज्जवलित सा हो उठता है। वीर रस की सत्ता में तो ओज गुण की स्थिति रहती ही है[1] परन्तु मम्मट के अनुसार रौद्र और वीभत्स रस में भी इसकी स्थिति

---

1. शृंगार एव मधुरः परः प्रहलादनो रसः। तन्मयं काव्यमाश्रिव्यू माधुर्यं प्रतितिष्ठति।।
   शृंगारे विप्रलम्भाख्ये करुणे च प्रकर्णत्। माधुर्यमाद्रतां यति यतस्तप्रधिकं मनः।। ध्वन्यालोक, 2/7, 8

स्वीकृत है। वर्गों के प्रथम तथा तृतीय वर्णों का अपने बाद में द्वितीया तथा चतुर्थ वर्णों के साथ संयोग (क–ग, च–ज, त–द, प–ब, ख–घ, छ–झ, थ–ध, फ–भ, के साथ संयोग वर्णों का र के साथ संयोग तुल्य वर्णों का योग, ट वर्ग के पहले चार वर्ण (ट, ठ, ड, ढ, श और ष से सभी वर्ण ओज गुण के अभिव्यंजक हैं। 'राधाचरितम्' महाकाव्य में वीर रौद्र और भयानक रस का अभाव होने के कारण ओज के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

अजीवयत्तेश्रु पुनार्जिजीविषा–

मुत्साहमाशामथ कर्म्मकामनाम्।

सर्वांश्च कल्याणकरेषु कर्म्मसु

प्रावर्तयत्सौरव्य समृद्धिदायिषु।। 10/46

श्रीमूतोऽयं क्षमपरिगतः प्राणिनस्तर्पविता

लोके सर्वान्निजसुखतरान् वीक्ष्यचित्ते विषण्णः

ध्यायन्नास्ते निमृतसुखदामद्य सौदामिनीं स्वां

प्रीतिश्शुद्धा भुविविजयते नात्र शुङ्का विद्येया।। 10/5

श्येना व्याघ्रा यदि खालजनाः पूर्णकामा भवेयुः

तत्संसारे खगमृगसतां दर्शनं दुर्लभं स्यात्।

तस्मादीशे निखिलजगतीपालके जातभक्तिः

निश्चिन्तोऽहं यतनिजमनाश्चात्मकार्ये प्रवर्ते।। कविपरिचय-5

प्रसाद गुण–

वर्गस्याद्यतृतीयाभ्यां युक्तौ वर्णौ तदन्तिमौ।

उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफौ टण्डढैः सह।।

शकारश्च षकारश्च तस्य व्यंजकतां गताः।

तथा समासो बहुलो घटनोद्धत्यशालिनी।। सा॰द॰ 8/5,7

शुष्कन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत् सहसैव यः।

व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वसाधारणक्रियः।।

श्रुतिमात्रेण यस्मात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत्।

साधारणः समग्रानां स प्रसादो गुणो मतः।। 8/ 70,71,76

चित्त में सहसा व्याप्त होने वाला जो सारे रसों एवं समस्त रचनाओं में रहता है, वह प्रसाद गुण है। जब वीर, रौद्र आदि उग्र रसों में प्रसाद गुण रहता है, तब वह शुष्क ईंधन में अग्नि की तरह चित्त में व्याप्त रहता है तथा शृंगार, करुण, शान्त आदि कोमल रसों में स्वच्छ वस्त्र में जल के समान व्याप्त हो जाता है।[1] जिस शब्द समास या रचना द्वारा श्रवण मात्र से ही विशेष प्रयास के बिना ही अर्थ की प्रतीति हो जाती है, वे सब प्रसाद गुण के अभिव्यंजक हैं।[2]

समग्र महाकाव्य वैदर्भी शैली से अनुप्राणित है और प्रसाद गुण से परिपूर्ण है। इस गुण के उदाहरण इसमें आद्यान्त व्याप्त हैं। यहाँ स्पष्टीकरण हेतु कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

शब्दों यथा व्योम्नि रसो यथा जले

तापो यथाग्नौ भुवि गन्धता यथा।

वायौ यथा स्पर्शगुणश्च वर्तते

तथैव नित्यं मयि राजसे प्रिये।।

वृद्धा युवानः पुरुषाः स्त्रियश्च

सर्वेऽपि कार्येषु निजेषु लग्नाः।

राधां च कृष्णं हृदि भावयन्त—

स्ते मेनिरे जीवनमर्थपूर्णम्।। 6/4

कर्म्मणा लभ्यते लक्ष्मीः

कर्म्मणा लभ्यते सुखम्।

---

1. समर्पकत्वं काव्यस्य यत्तु सर्वरसान् प्रति। स प्रसादो गुणो ज्ञेयः सर्वसाधारणक्रियः। ध्वन्यालोक 2/10
2. शब्दास्तद्व्यंजका अर्थबोधकाः श्रुतिमात्रतः।। सा.द. 8/8

कर्म्मणा लभ्यते मानः

कीर्तौ कर्म्मैव कारणम्।। 3/69

उक्त पद्यों में प्रसाद गुण है। सरलता और स्पष्टता दोनों गुण यहाँ समान रूप से समाहित हैं। सभी शब्द सुपरिचित हैं पदों में क्लिष्ट समास भी नहीं है पद्य पढ़ते ही अर्थ हृदयङ्गम हो जाता है। अतएव उपर्युक्त पद्यों में प्रसाद गुण निहित है। श्लोक पढ़ते ही मन में एक प्रकार की स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है। शब्द संयोजन की दृष्टि से प्रसाद गुण है ही, अर्थ योजना भी प्रसाद पूर्ण है। जिस प्रकार नदी की धारा में पड़ा पाषाण खण्ड नदी की लहरों से टकराता हुआ सुचिक्कण और क्रमशः कोमल बन जाता है उसी प्रकार रम्य शब्दावली में प्रयुक्त भावयोजना पाठक के सरस हृदय में सहज रूप में प्रविष्ट हो जाती है। छन्द की धारा में शब्दावली स्वयं प्रवाहित होती है और शब्द स्वयमेव सरस अर्थाभिव्यक्ति करते हैं।

डॉ॰ हरिनारायण दीक्षित ने अपने ग्रन्थ राधाचरितम् महाकाव्य में प्रसाद गुण का अधिक प्रयोग किया है। यद्यपि प्रसादगुण सर्वत्र है। तथापि ललित और मधुरस की न्यूनता नहीं है। स्वभावतः जहाँ प्रसादगुण होता है वहाँ माधुर्यगुण स्वतः प्रस्फुटित होता चलता है।

संसार के सभी काव्यशास्त्रियों ने काव्य के लिए प्रसाद गुण आवश्यक बताया है क्योंकि काव्य का परिपाक तभी सार्थक होता है, जब पाठक सरलता के साथ उसे समझता चल सके। काव्य को पूर्णतः आत्मसात् करके उसका रस तभी प्राप्त हो सकता है जब काव्य अपने प्रसाद गुण के कारण अत्यन्त सरलता के साथ ग्राह्य हो सके। राधाचरितम् महाकाव्य अपने इसी गुण के कारण सहृदय पाठकों का प्रिय ग्रन्थ है।

3. दोष विवेचन–

सहृदय श्लाघ्य सत्काव्य में दोष साहित्य नितान्त अपेक्षित है। दोष काव्य को अपकर्ष प्रदान करते हैं। अतः सुकवि को इनसे बचना ही श्रेयस्कर है। काव्य-दोषों का सर्वप्रथम उल्लेख आचार्य भरत ने किया। 'नाट्य शास्त्र' में दोषों का उल्लेख एवं लक्षणों का उल्लेख किया है।[1] आचार्य भामह की मान्यता है कि दोष-युक्त काव्य कुत्सित पुत्र के समान निन्दनीय होता है। कवि न होने से तो मनुष्य पाप का, रोग का या दण्ड का ही

1. ना.शा. 16/88, 89-94

भागी हो सकता है, परन्तु ज्ञानी मनुष्यों के अनुसार बुरा कवि होना तो मृत्यु के समान है।[1] भामह ने 'काव्यालंकार' में 11 दोषों का उल्लेख किया है।

आचार्य दण्डी भी काव्य में दोषों के परिहार को महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार काव्य में छोटे से छोटा दोष अक्षम्य है, क्योंकि वे काव्य की विफलता के निमित्त होते हैं। काव्य में छोटा-सा भी दोष इस प्रकार का होता है, जैसे कि सुन्दर शरीर में कोढ़ का दाग हो और इससे घृणा का भाव उत्पन्न होता है। दण्डी ने 10 दोषों का उल्लेख किया है।[2]

दोष का स्वरूप–

मम्मट ने दोषों के स्वरूप के लिए कहा है–मुख्य अर्थ का अपकर्ष करने वाले तत्व दोष कहलाते हैं। काव्य में रस ही मुख्य अर्थ है, अतः रस का अपकर्ष करने वाले तत्व दोष हैं। क्योंकि रस की अभिव्यक्ति शब्द और अर्थ का आश्रय लेकर होती है, अतः ये दोष शब्द और अर्थ में भी हो सकते हैं।[3] विश्वनाथ ने दोष का जो स्वरूप बताया है, वह मम्मट से अधिक भिन्न नहीं है। उनके अनुसार रस के अपकर्षक तत्व दोष हैं।[4]

आचार्य अलङ्कारवादी जयदेव के अनुसार–दोष वह होता है, जिसके द्वारा मन में उद्वेग उत्पन्न होता है और काव्य की रमणीयता नष्ट होती है। यह दोष शब्द और अर्थ में रहता है।[5] प्राचीन आचार्यों ने दोषों का वर्णन सामान्य रूप से किया था। इनको उन्होंने काव्यशास्त्र के एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में प्रस्तुत नहीं किया। उत्तरवर्ती आचार्यों के समान उन्होंने दोषों का विभाजन पद, वाक्य, अर्थ, रस आदि की दृष्टि से नहीं किया। दोषों की विवेचना में उनका वर्गीकरण सबसे पहले वामन ने किया था। वामन ने यह वर्गीकरण पद-पदार्थ दोषों के रूप में किया। उन्होंने अलङ्कारों के दोष भी बताये थे। मम्मट आदि आचार्यों ने वामन के इस विषय विभाजन को कुछ अंशों में तो स्वीकार किया था, परन्तु सम्पूर्ण रूप से नहीं। भरत से लेकर विश्वनाथ तक अनेक आचार्यों ने दोषों के स्वरूप तथा

---

1. काव्यालंकार 1/9-10
2. काव्यादर्श 1/7, 3/125-126
3. का.प्र. 7/49
4. सा.द. 7/1
5. चन्द्रालोक 1/2

उनके भेदों का विवेचन किया है। परन्तु सबसे अधिक पूर्ण तथा सन्तुलित विवेचन मम्मट और विश्वनाथ का है। दोनों का विवेचन प्रायः एक-सा है।

दोष की परिभाषा करते हुए मम्मट ने तीन प्रकार के दोषों का उल्लेख किया है—पद दोष, अर्थ दोष तथा रस दोष। तदनन्तर उन्होंने पददोष के भी तीन विभाग किये—पद दोष, पदांश दोष और वाक्य दोष। इस प्रकार मम्मट दोषों को पाँच वर्गों में विभक्त करते हैं—पद दोष, पदांश दोष, वाक्य दोष, अर्थ दोष और रस दोष। विश्वनाथ ने सीधे ही दोषों का पद, पदांश, वाक्य, अर्थ और रस इन पाँचों वर्गों में विभाजन किया था।[1]

विश्वनाथ के अनुसार वाक्य दोष के अन्तर्गत 13 दोषों का उल्लेख किया है। जबकि मम्मट ने 21 वाक्यदोषों का उल्लेख किया है।[2]

डॉ॰ हरिनारायण दीक्षित का ग्रन्थ 'राधाचरितम्' राधा के चरित् के समान ही निर्दोष है जिसमें सायास खोजने पर भी दोषों की प्राप्ति नहीं होती। यह कवि के निर्मल चित्त एवं निरन्तर काव्याभ्यास का प्रतीक है।

काव्य में रस दोष ही महद्दोष माना गया है। इस दृष्टि से विचार करें तो राधाचरितम् में रसदोषों का सर्वथा अभाव है। प्रथम सर्ग में राधा श्रीकृष्ण के वियोग में व्यथित होकर चिन्तन करती है और व्रज एवं व्रजवासियों की दशा का विचार करती तब वहाँ रस परिवर्तन होता है। राधा विप्रलम्भ शृंगार से यथार्थ एवं कर्त्तव्य के धरातल पर अवतरित होती है—

अधर्मनाशाय विधीयमानाः, त्वया प्रयत्ना अपि सन्ति हृद्याः।

तत्ते सखीत्वाद् व्रजवासिनस्ते, मयैव रक्ष्या इति चिन्तयामि।। 1/58

इसके उपरान्त राधा का व्रज के विषय में चिन्तन प्रारम्भ हो जाता है। अतः यहाँ रस परिवर्तन होता है। किन्तु रस दोष नहीं होता।

अर्थ दोष—अर्थ दोष की दृष्टि से विचार करने पर कहीं-कहीं ऐसे प्रयोग प्राप्त होते हैं जो औचित्य की दृष्टि से दोष कहे जा सकते हैं। वस्तुत प्रतीयमान अर्थ में दुष्टकाव्य

1. सा.द. 7/1
2. का.प्र. 7/53-55

कहने की अनुमति नहीं देता है। उदाहरणार्थ–

गोदोहकाले दधिमन्थकाले, निवर्तमानासु वनाच्च गोषु।

पत्ये शयाना अपि रात्रिकाले, त्वामेव ताश्श्याम सदा स्मरन्ति।। 1/42

यहाँ तृतीय पाद में शयनकाल में पति के साथ रहते हुए अन्य पुरुष का चिन्तन दोष है जिसे औचित्य दोष की श्रेणी में रखा जा सकता है, किन्तु कृष्ण के वियोग के प्रसंग में जहाँ हर पल कृष्णस्मरण ही महत्वपूर्ण है, यह दोष प्रतीत नहीं होता।

पद दोष–पद दोष की दृष्टि से विवेचना करते हुए कहीं कहीं ऐसे पद मिलते हैं जो दोष कहे जा सकते हैं। इसकी संख्या प्रायः नगण्य है और महाकाव्य के वृह्द आकार में वे कहीं महत्त्व नहीं रखते हैं।

कदिच्छा लहरीलोलं, कुमित्र नक्रसङ्कुलम्।

अहंकार समुज्जवारं, क्रोधगर्तं मदानलम्।।

यहाँ कुमित्र, नक्र, क्रोध, गर्त आदि में रेफ़ के प्रयोग से उच्चारण में काठिन्य तथा श्रवण में कटुता होने के कारण **श्रुतिकटुत्व** दोष माना जा सकता है।

परन्तु पुत्रस्य न पाणिपीडनं, यावद् भवेत्तावदसौ तु राधिके।

मात्रेव नित्यं भवतीह वीक्षितः, कृष्णश्च पत्नीरहितोऽस्ति मेऽधुना।।

यहाँ 'विवाह' के अर्थ में पाणिपीडनं' पद का प्रयोग हुआ है। लोक में विवाह के लिए 'पाणिग्रहण' पद प्रसिद्ध है। अतः यहाँ **अप्रसिद्ध दोष** माना जा सकता है।

इसी प्रकार अन्यत्र–

इत्थं वदन्तीमथ नन्दगेहिनीम्

उवाद राधा यदुनन्दनप्रिया।। 2/41

यहाँ 'उवाद' पद का प्रयोग हुआ है जो कम प्रचलित है 'उवाच' पद का प्रयोग प्रसिद्ध है अतः यहाँ भी **अप्रसिद्ध** कहा जा सकता है।

दृढ़यन्ति नरा नित्यं

जङ्घे इवात्र जाङ्धिकाः। 3/41

यहाँ धावक प्रतियोगियों के लिए प्रयुक्त 'जाङ्धिका' पद **अप्रसिद्ध** है।

भूत्वा सर्वे करिष्यन्ति, परिवारकुलोन्नतिम्।

मिलित्वा सँविधास्यन्ति, ग्रामराष्ट्रोन्नतिं तथा।। 3/86

प्रस्तुत उद्धरण में प्रथम पद 'भूत्वा' **निरर्थक** है।

राधाचरितम् में कहीं-कहीं **पुनरुक्ति दोष** भी मिलता है। उदाहरणार्थ तृतीय सर्ग के श्लोक संख्या 199, 200, 203 में कवि ने श्लोकार्ध को उसी रूप पुनः उल्लिखित किया है–

पूजा पाठो जपो यज्ञस्

तीर्थयात्रा व्रतादि च।

इसी प्रकार–

अधीतिनो भविष्यामो

भविष्यामोबलान्विताः। 3/271

यहाँ 'भविष्यामो' का निरन्तर दो बार प्रयोग पुनरुक्ति दोष प्रकट करता है। कवि ने एक पद का द्वित्व रूप में प्रयोग अधिकांशतः किया है जैसे–

यदा यदा .... तदा तदा 1/9, 5/55, 67

तत् तत् 5/58

गृहे गृहे 5/48, 52, 59, 63, 74

युगे युगे 5/56,

निजं निजं 5/29

ततः ततः 5/41

अन्यत्र–

वृद्धा युवानः पुरुषाश्च योषितो, बालाः किशोरा निखिला यथोचितम्।

अध्येतुकामाः समये सुनिश्चिते, तेष्वाव्रजन्तिस्म तदा सदा मुदा।।

यहाँ चतुर्थ चरण में 'तदा सदा मुदा' का प्रयोग अनुप्रास की शोभा तो उत्पन्न रता है, किन्तु यहाँ **'बन्धशौथिल्य'** दोष प्रतीत होता है।

कवि ने पद की दृष्टि से लोक में प्रचलित हिन्दी पदों को भी संस्कृत रूप देने का प्रयास किया है। जैसे रोटी (1/8) घास (1/30) पनीर-मावा (4/12), अचार (4/16) आदि। कहीं-कहीं यह काव्य की धारा में बह जाते हैं, किन्तु कहीं-कहीं संस्कृतकाव्य की गति को प्रभावित करते हैं।

छन्द की दृष्टि से डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने छन्दों का प्रयोग भावानुकूल ही किया है। जैसे—वियोग के प्रसंग में मन्दाक्रान्ता प्रयोग किया गया है। बसन्ततिलका का प्रयोग नायिका के उत्कृष्ट चरित के वर्णन में किया है। मालिनी का प्रयोग सर्गान्त में उचित माना गया है जिसका प्रयोग राधाचरितम् में मिलता है। इस प्रकार रसानुकूल छन्दों का बहुत ही सुन्दर प्रयोग मिलता है। कवि ने दोष रहित रचना का पूर्ण प्रयास किया है जिसके फलस्वरूप कहीं-कहीं छन्द-विच्छेद मात्र मिलता है।

इस प्रकार दोष विवेचन की दृष्टि से कहा जा सकता है कि 'राधाचरितम्' महाकाव्य में कदाचित् प्राप्त दोष चन्द्रमा के कलङ्क की भाँति दूषण नहीं करते हैं। और रस में बाधक न होने के कारण 'दोष की कोटि में भी नगण्यप्रायः है। अतः डॉ. हरिनारायण दीक्षित का यह महाकाव्य राधाचरितम् दोष विवेचन की कसौटी पर भी खरा उतरता है।

4. प्रकृतिचित्रण–

प्रकृति चित्रण महाकाव्य का एक अनिवार्य अंग है। प्रकृति-वर्णन से प्रस्तुत वर्ण्य-विषय भी अलंकृत हो जाता है। प्रकृति चित्रण के बिना कवि की रचना अधूरी एवं अनलंकृत सी प्रतीत होती है। यही कारण है कि प्रायः सभी कवियों ने अपने-अपने काव्यों में प्रकृति-चित्रण को अवश्य स्थान दिया है। किसी कवि ने प्रकृति के आलम्बन रूप का चित्रण किया है। किसी ने उद्दीपन रूप का चित्रण किया है और कुछ ऐसे कवि भी हुए हैं जिन्होंने प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनों स्वरूपों का चित्रण किया है।

प्रकृति से सम्पूर्ण ब्राह्मण्ड उत्पन्न हुआ है। मानव प्रकृति का एक अभिन्न अंग है। मानव जाति के अस्तित्व की कल्पना प्रकृति से भिन्न नहीं है। जीवन का संचार प्रत्येक

पहलू से प्रकृति पर ही निर्भर है। सांख्यदर्शन के अनुसार पुरुष एवं प्रकृति के सहयोग से ही इस संसार की सृष्टि मानी जाती है। प्रकृति भौतिक जगत् की मूल है। जीव-जगत् का आदि और अन्त प्रकृति के मध्य और प्रकृति के ही सम्पर्क एवम् साहचर्य से है। यह मनुष्य के समस्त क्रियाकलापों की क्रीड़ास्थली है। प्रकृति के सुगन्धित आँचल एवं पवित्र कोमल गोद में मानव शक्ति का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक, आध्यात्मिक विकास निरन्तर गति से चलता है। इसका अमिट अपरिमित वैभव मनुष्य के लिए आश्चर्य, कौतूहल, श्रद्धा अनुराग आदि विभिन्न भावनाओं का विषय रहा है। मानव सौन्दर्यानुभूति की आवश्यकता की पूर्ति प्रकृति अपने सौन्दर्य से ही करती है। मानव जीवन के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ प्रकृति ही संजोती रही है। प्रकृति का सौन्दर्य सदैव ही मानव मन को आकर्षित एवं सुखद अहसास कराता रहा है। प्रकृति के सौन्दर्य को बढ़ाने में तेज से युक्त सूर्य समस्त सृष्टि को प्रकाश से पूरित व प्रफुल्लित करता है। चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों द्वारा शीतलता प्रदान करता है। उनके सगुन्धयुक्त उपवन विचित्रता के रंग-रूप को धारण करने वाले, मानव मन को हिमालय की बर्फ से ढ़की ऊँची चोटियाँ गगन को छूती हुई, शान्ति शीतलता एवं सुख प्रदान करती है।

प्रकृति जहाँ हमें सुख वैभव प्रदान करती है वहीं हमारे दुःख की भी चिरकालीन (संगिनी) सहचरी है। सांसारिक कष्टों से पीड़ित मानव प्रकृति का आश्रय लेकर आनन्द की प्राप्ति करता है। ऋषि मुनि प्राचीन काल में ब्रह्मा की प्राप्ति के लिए प्रकृति की गोद में समाधि लगाया करते थे आज भी भौतिकता के युग में जो सुख की अनुभूति शेष बची है, वह केवल प्रकृति के सानिध्य में ही है। प्रकृति का सानिध्य पाकर मानव नानविध कल्पनाओं में डूब जाता है। कवि भी एक मानव है। यद्यपि वह तो नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का स्वामी है।[1] तथापि प्रकृति उसको काव्य सृजन की प्रेरणा प्रदान करती है। ऋषि प्रणीत समस्त वैदिक साहित्य आद्यंत प्रकृति की महिमा से मंडित है। सूर्य, अग्नि, सविता, पर्जन्य, आदि देवता प्रकृति के ही विभिन्न रूप हैं, जो मानव के अभाव को दूर कर उसको सुख-समृद्धि तथा समस्त वैभव से परिपूर्ण कर आनन्दमय बनाते हैं। प्राकृतिक तत्व, पृथ्वी, जल, तेज आदि ही भूत सृष्टि के आदि तथा अन्त हैं।

---

1. काव्यानुशासन–वाग्भट–प्रथमाध्याय, पृष्ठ सं. 2

कवि काव्य में अपनी विशिष्ट प्रतिभा के बल पर जड़ प्राकृतिक दृश्यों में भी चेतन धर्म का आरोप कर लेता है। काव्य में प्रकृति कवि की सूक्ष्म दृष्टि एवम् नवीन कल्पनाओं का आश्रय पाकर मानों सजीव हो उठती है। साहित्य में प्रकृति वर्णन अपना एक अलग स्थान रखता है। "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति"[1] ही प्रकृति का शाश्वत संदेश है। वह हजार वर्ष पूर्व भी नवीन थी, आज भी है। वह कवि प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। कभी वह मानव मन में सहानुभूति एवं संवेदनशीलता व्यक्त करता है। कभी वह मानव सौन्दर्य को अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के उपमानों का अन्वेषण करता है तो कभी वह प्रकृति के द्वारा उपदेश प्रदान करता है। संस्कृत के कवियों में प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति भी है। इस प्रकार का मुख्यतः आलम्बन, उद्दीपन, योजना और उपदेशात्मक रूप में प्रकृति चित्रण साहित्य में होता है।

यद्यपि डॉ॰ हरिनारायण दीक्षित ने अपने काव्य में प्रकृति-चित्रण को विशेष महत्व दिया है महाकवि ने अपने काव्य में प्रकृति-चित्रों का चित्रण सहज, स्वाभाविक, मनोहर वर्णन किया है। ग्रन्थ का प्रारम्भ ही प्रकृति के उपांगों से हुआ है–'कलिन्दकन्या- कमनीयकूले .... कदम्बमूले'।[2] तदुपरान्त गायें, यमुना नदी, गोवर्धन पर्वत, व्रजभूमि आदि अनेक तत्त्व प्रकृतिचित्रण के आधार बने हैं। डॉ॰ हरिनारायण दीक्षित ने महाकाव्य के तृतीय सर्ग में प्रकृति का मानवीकरण किया है। परमपिता परमात्मा की सहेली की भी प्रतिवर्ष छः अवस्थाएँ हो जाती हैं। यहाँ पर कवि की दार्शनिकता के भी दर्शन मिलते हैं।[3]

बसन्त वर्णन–

राधाचरितम् महाकाव्य में स्मृति सर्ग में बसन्त ऋतु का वर्णन किया है। लताओं और वृक्षों ने नए पत्तों के वस्त्र पहन लिए हैं, धरती ने सरसों के पीले फूलों की साड़ी पहन ली, तालाबों में कमल के फूल खिल गए, इन सबने मिलकर लोगों के मन को चञ्चल बना दिया। लताएँ व वृक्ष मन को अच्छे लगने वाले सुन्दर फूल खिल गए, उनके मधुर पराग की बूँदों को पीने के लिए प्यासे भँवरे उन पर मँड़राने लगे। आम के वृक्षों पर कोयले कूकने लगी, तोता-मैना प्रसन्नतापूर्वक उन पर आकर आपस में बातें करने लगे, और उनकी

1. ध्वन्यालोक, भाग-2 पृष्ठ सं. 1229
2. राधा॰ 1/1
3. वही; 3/49

मञ्जरियों की मनोहर सुगन्ध से मुग्ध हुए भँवरों के झुण्ड के झुण्ड उन पर आकर गुञ्जार करने लगे। कोयलों का वह कूजन तोता-मैनाओं का वह संवाद और भँवरों का वह गुञ्जन-ये सब मिलकर उस समय यह सूचित कर रहे थे कि धरती पर देवी रति और कामदेव पधार चुके हैं। उन दिनों मानवती स्त्रियों का मान लुप्त हो गया, तो संयमी पुरुषों का संयम भी नष्ट हो गया। क्योंकि कामदेव का प्रभाव तो भगवान् के प्रभाव के समान होता है, जो स्त्री पुरुष में भेद नहीं करता। उस समय केवल स्त्री-पुरुषों के ही शीतार्त्त चित्त प्रेम से कोमल नहीं हुए, बल्कि पशु-पक्षी आदि प्राणियों में भी प्रेम की वह धारा बहती हुई दिखाई दे रही थी। उन दिनों हिरनियों की बाईं आँख में सहेली की तरह सर्वप्रथम आहिस्ता-आहिस्ता हटाई जाने योग्य खुजली पैदा होने लगी। बरगद के पेड़ के नीचे हिरन अपने सींग की नोंक से अपनी हिरनी को खुजलाता हुआ और उम्मीद के साथ अपनी जीभ से उसे चाटता हुआ प्रेमपूर्वक उसको प्रसन्न करने लगा। हाथी ने अपनी हथिनी को अपने अनुकूल करने के लिए अपनी चञ्चल सूँढ से उसके कान को छुआ। फलस्वरूप चञ्चल हुई आँखों वाली उस हथिनी ने भी प्रसन्न होकर अपनी सूँढ उठाकर उसका स्वागत किया। फूलों के पराग को पीकर मतवाले हुए मन वाले भँवरे ने अपनी जाया को प्रेम से याद करते हैं। उसकी भँवरी भी उसका साथ पाने की अभिलाषा से भँवरे को खोजती हुई वहाँ आ पहुँची। तोते अपने मैना के और कोकिल अपनी कोकिला को प्रसन्न करने लगे। जंगल में मोर अपने नृत्य द्वारा अपनी मोरनी को प्रसन्न करने लगे। मोरनी भी काम-भाव से वार-वार उसकी परिक्रमा करती हुई उसके शारीरिक अङ्गों के संग की कामना करने लगी। कबूतरी के साथ रहने वाले कबूतरों की रमण सूचक गुटरगूँ की आवाजों में क्रमशः वृद्धि होने लगी। शेर, जो स्वभाव से ही क्रूरतम प्राणी है, वह भी उन दिनों अचानक ही कोमल मन वाला हो गया। झाड़ियों पर, लताओं पन, पेड़ों पर, नदियों के किनारे, बावडियों में, सरोवरों में, बागों में, बगियों में, पहाड़ों पर, जंगलों में, सभी जगह बसन्त ऋतु का वैभव दिखाई देने लगा।[1]

आश्रम वर्णन–

राधाचरितम् के सोलहवें सर्ग में आश्रम के माध्यम से कवि ने पुनः प्रकृति के पवित्र रूप का वर्णन किया है। सिद्धाश्रम में जीव-जन्तुओं ने स्वाभाविक वैरभाव त्याग दिया

1. राधा. 6/14-31

है, और यहाँ के पेड़-पौधे और लताएँ इस समय असमय में भी फूलों और फलों से लदे हुए हैं। कहीं तोता-मैनाएँ गीत गा रहे हैं—कहीं कोयलें मीठी आवाज में कूक रही हैं, और कहीं फूलों पर भँवरे गुञ्जार कर रहे हैं, जिससे वह आश्रम प्राणवान हो उठा है। आश्रम में शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा चल रही है, सभी वेदियों में धूमहीन अग्नि जल रही है, आकाश निर्मल दिखाई दे रहा है। धरती सुहावनी लग रही है, जल पवित्र प्रतीत हो रहा है, आश्रम में रहने वाले हिरनों और मयूरों में भी आज भय की भावना दिखाई नहीं दे रही है।[1]

समुद वर्णन–

'द्वारका दर्शन' सर्ग में समुद्र की आधार बनाकर डॉ. दीक्षित ने प्रस्तुति के मानवीय रूप को प्रस्तुत किया। समुद्र की लहरे कोमलतापूर्वक नृत्य कर रही थीं। कानों की अच्छी लगने वाली अपनी आवाज में कुछ गा रही थी, नगर की दीवाल से टकरा-टकरा कर वे मृदङ्ग बजा रही थीं। इस प्रकार उनके इस त्रिविध संगीत ने राधा को प्रसन्न किया। महाकवि डॉ॰ हरिनारायण दीक्षित ने समुद्र का मानवीकरण किया है। अपने तरंगरूपी हाथों से द्वारकापुरी की दीवाल की हरपल कोमलतापूर्वक छूता हुआ समुद्र अत्यन्त पुण्यदायिनी द्वारका को प्रणाम सा कर रहा है।

द्वारकापुरी के चारों ओर फैला हा उठती हुई अपनी लहरों से आवाज करता हुआ विशाल समुद्र उस रात में निरन्तर जागते हुए पहरेदार की तरह लग रहा था।

गोवर्धन पर्वत का वर्णन–

राधाचरितम् महाकाव्य के व्रजदर्शन सर्ग में गोवर्धन पर्वत के नैसर्गिक सौन्दर्य का मनोहर वर्णन किया गया है। गोवर्धन पर्वत की सुन्दरता को देखकर नारद स्वर्ग की सुन्दरता को भूल जाते हैं। गोवर्धन पर्वत पर सुशोभित कहीं कदम्ब, खजूर, करीर के वृक्षों ने, आम के वृक्षों न कहीं गगनचुम्बी बाँस के पेड़ों ने, कहीं बरगद के वृक्षों ने और कहीं चञ्चल पत्तों वाले पीपल के वृक्षों ने लताकुञ्जों ने, कोमल घास वाली धरती ने, सूर्य के प्रकाश से युक्त हवादार सुन्दर गुफाओं ने, भूख मिटाने वाले फलदार वृक्षों ने, प्यास बुझाने वाले झरनों ने, पर्वत पर विचरण करने वाले हिरनों ने, जंगली वराहों और खरगोशों ने पानी पीते हुए

---

1. राधा. 16/20-23

जंगली भैंसो ने, घास चरते हुए गायों ने, नाचते हुए मोरों ने, झील के किनारे बैठे हुए हंसों ने, कहीं कृष्ण-2 कहते तोतों ने, कहीं वृक्षों की डाल पर बैठे बन्दरों ने, नारदमुनि के मन को मुग्ध कर दिया।

कहीं फूलों से लदे, कहीं फलों से लदे वृक्षों से, कहीं फूलों के कालीनों से सजी बैठने योग्य चौकीनुमा पाषाणशिलाओं ने, भँवरों के गुञ्जन से, वह गोवर्धन पर्वत मानों नारद मुनि की स्तुति कर रहा हो। गोवर्धन पर्वत ने अपने फूलों के पराग से नारद मुनि के रास्ते को भर दिया। गोवर्धन की अनुपम सुन्दरता ने नारद मुनि के मन को मन्त्र-मुग्ध कर दिया।[1]

मार्गवर्णनः—

यात्रा सर्ग में कवि ने मार्गवर्णन किया है और प्रकृति-चित्रण के अवसर का सदुपयोग किया है। मार्ग में मिले खेतों में गेहूँ और जो के ताजे-2 अंकुरों को, धान के विशालकाय खेत में हो रहे हवा के नृत्य को, और कहीं मिठास के खजाने बने गन्ने के खेतों, कहीं वृक्ष की सुन्दरता को कहीं बेरी के वृक्षों के वनों की मनोरम छटा को तथा कहीं सोने-जैसे रंगवाले चकोतरा नीबुओं की शोभा को, कहीं खेत में लगे हुए किसानों को, कहीं झड़ियों और झुरमुटों में खिले हुए फूलों की शोभा को कहीं सरोवरों में खिले हुए कमलों की खूबसूरती को, कहीं कुएँ पर चल रही रेंहट के पानी उड़ेलने वाले घड़ों कों, कहीं खलियानों में रखे हुए अन्न के बड़े-2 ढ़ेरों को कहीं खड़े हुए ऊँचे-2 वृक्षों की कतारों को देखते हुए आगे बढ़ते हैं। रास्ते में, खेतों में, पुखराज की सृष्टि की तरह प्रतीत होने वाली, सुनहरे रंगवाली, हवा से चञ्चल, पकने के लिए तैयार मक्का की सुन्दरता को देखते हैं। हवा से लहराते हुए, कोमल, चमकीले, मनभावन खुशबू वाले, हरे-भरे तथा बढ़ते हुए सरसों के पौधों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए यमुना नदी के किनारे वाले मार्ग को धीरे-धीरे छोड़ते हुए, व्रजवासी सरस्वती नदी के किनारे वाले मार्ग पर पहुँचते, वहाँ के वातावरण में अतुलनीय पवित्रता थी। व्रजवासी लोग सरस्वती नदी में स्नान किया, उसके जल में दूध की छवि और गन्ने के रस की मिठास से बहुत आनन्दित हुए। शरीर द्वारा सहन करने योग्य शीतलता

---

1. राधा॰ 8/10-23

वाले, अमृत के सगे भाई जैसे उस निर्मल नीर में स्नान करके वे लोग रास्ते की थकान को भूल गये।[1]

इस प्रकार यात्रा के प्रसंग में भी कवि प्रकृति के प्रसंगानुकूल, सहज और मनोरम रूप का चित्रण कर कालिदास सदृश कवियों की पंक्ति में स्थान बनाते हैं।

सूर्यग्रहण वर्णन–

डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने अपने कला-कौशल से केवल सूर्योदय, चन्द्रोदय का ही वर्णन राधाचरितम् में नहीं किया, अपितु राहु द्वारा सूर्यग्रहण का सुन्दर, स्वाभाविक, दृश्य उपस्थित कर पाठकों के मन को मोह लिया है। कवि ने सूर्यग्रहण का सहज एवं स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया।

आज के वैज्ञानिक युग में जब लोग सूर्यग्रहण के मनोरम दृश्य को वैज्ञानिक उपकरणों जैसे दूरर्शन, टैलीस्कॉप आदि की सहायता से देखते हैं कवि ने उसको क्रमिक दृश्यावली को शब्दचित्र में प्रस्तुत किया और उसे पाठकों के समक्ष मानों साकार कर दिया है।

काजल के ढ़ेर जैसे राहु ने धीरे-धीरे सूर्य को ढ़कना शुरू कर दिया, और उस समय सूर्य के बिम्ब पर, राहु की दाढ़ जैसी, एक कुटिल आकृति लोगों को साफ-साफ दिखाई देने लगी। हजारों किरणों वाले सूर्य के भी शिरोमात्र शरीर वाले राहु द्वारा किये गये उस पराभव को देखकर उस समय सहृदय और सुधीजनों के मन मुरझा गये। सभी के देखते-देखते राहु ने सूर्य के उस पूरे बिम्ब को अचानक ही निगल लिया। सब और अँधेरा छा गया, संसार के सभी जीव-जन्तु स्तब्ध हो गये। उस समय पक्षियों ने और हिरनों ने समझ लिया कि रात आ गई और वे अपने-अपने बसेरे की ओर लौटने लगे। आसमान में तारे चमक उठे, धरती पर भँवरों ने मौन धारण कर लिया, पक्षी अपने-अपने बसेरे की और लौटने लगे। जो इस जड़ और चेतन जगत् को प्रकाशित करता है, उसी सूर्य को आज राहु ने निगल लिया। उस समय सभी लोग खिन्न हो रहे थे, और राहु के चंगुल से सूर्य का छुटकारा चाह रहे थे, तभी अचानक सूर्य का वह मण्डल शीघ्र ही चारों ओर से अत्यन्त चमकीला होता हुआ चमक उठा। उस समय आसमान में, आकाश की देवी के कान के

---

1. राधा. 9/46-75

कुण्डल की तरह, दिशा की देवी के हाथ के कङ्गन की तरह और अप्सरा के हाथ की अँगुली के लिए बनी हीरे की अँगूठी की तरह वह सूर्यमण्डल दमक उठा।[1]

सरस्वती नदी वर्णन–

सरस्वती नदी के सामीप्य में पहुँचकर सभी व्रजवासियों के हृदय में सत्वगुण की प्रभुता हो गई, उनकी बुद्धि में निर्मलता बढ़ गई, उनके शरीर में स्फूर्ति का सञ्चार बढ़ गया, उनके चिन्तन में शान्ति ने घर कर लिया। व्रजवासियों ने सरस्वती नदी के जल में स्नान किया। उसके जल में दूध की छवि, और गन्ने के रस की मिठास देखकर बहुत आनन्दित हुए। सरस्वती के निर्मल नीर ने व्रजवासियों की रास्ते की थकान को भूला दिया और ताजगी प्रदान की। सरस्वती नदी की भव्यता, पवित्रता और अद्‌भूत दिव्यता से पूर्ण थी।[2] महाकाव्य में बलभद्र, गणेश, कृष्ण सूर्य, इन्द्र, शिव और ब्रह्मा, शक्ति सरोवर[3] और राधासरसी नामवाली झील का भी वर्णन है।[4]

इस प्रकार प्रकृति की गोद में बसे नैनीताल के निवासी डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने प्रकृतिचित्रण के किसी भी अवसर को व्यर्थ नहीं जाने दिया। उन्होंने सहज रूप में गत्यवरोध के बिना प्रकृति के विविध रूपों को यथावसर प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रकृति को हीं **उपमानुरूप** में प्रस्तुत किया।[5] यदुवंश सूर्य कृष्ण से वियुक्त होती हुई राधा सूर्य के जाने से मुरझाती हुई कमलिनी जैसे मुरझाने लगीं। कहीं प्रकृति **उपदेशिका रूप में प्रकट होती** है[6]–संसार को प्रकाशित करने के लिए निकले सूर्य के विषय में पूर्व दिशा कभी शोक नहीं करती और पृथ्वी के सन्ताप को शान्त करने के लिए निकले मेघ के विषय में समुद्र कभी शोक नहीं करता। इसीलिए जगत्‌हित के लिए निकले कृष्ण के लिए राधा भी शोकाकुल नहीं है कहीं प्रकृति का **उद्दीपन रूप** प्रस्फुटित होता है।[7] स्मृति सर्ग से व्रज के समस्त कष्टों को दूर करने वाली राधा द्वारा कृष्ण के स्मरण के प्रसंग में प्रकृति के इसी रूप के

1. राधा. 10/8-17
2. वही; 9/65-68
3. वही; 10/12, 21
4. वही; 17/38, 40
5. वही; 1/48, 49, 11240
6. वही; 2/8, 3/48-50, 52, 11/27
7. वही; 6/15, 20-30, 33, 34, 52, 63

दर्शन होते हैं जो राधा के वियोग में उद्दीपन का कार्य करती है और आगामी कथा (यात्रा) हेतु पृष्ठभूमि तैयार करती है। यहीं **वही प्रकृतिप्रिय के स्मरण के स्मरण का साधन** बनती है।[1] डॉ. दीक्षित द्वारा चित्रित प्रकृति **मानवीय रूप एवं भाव** भी धारण करती है। अतः वह कृष्ण के प्रति अपनी **कृतज्ञता** भी समर्पित करती है[2]—व्रज में रहने वाले सभी पशु-पक्षी, वृक्ष, लताएँ, पर्वतीय क्षेत्र, वन यमुना, गुफा आदि कृष्ण सम्बन्धी कथाओं को याद करते हैं और स्वयं को प्रेमपूर्वक उनका कर्जदार मानते हैं। यही मानवीकृत प्रकृति परमात्मा की सहेली बन वर्ष में छः रूप धारण करती है।[3] राधाचरितम् में चित्रित प्रकृति के समान अपनी **प्रसन्नता को भी अभिव्यक्त** करती है—पुण्यदायिनी यात्रा में लौटी राधा को देखकर हिरन आसमान में छलाँगे लगा रहे हैं, कोयलें ऊँचे स्वर में, मीठी आवाज में कूक रही है।[4] प्रकृति के पारस्परिक विरोध रूप मानव की सभी अवस्थाओं में समरूप रहने की प्रेरणा देते हैं[5]—जो जल लोगों की प्यास बुझाता है, वही बाढ़ में लोगों की जान ले लेता है, जीवन देने वाला आकाश भी समुद्रयात्रियों को कभी-कभी दिग्भ्रमितकर देता है। प्रकृति के इस **क्रूर रूप** के साथ-साथ कवि ने प्रकृति के **कोमल एवं अनुकूल** रूप का भी चित्रण किया है। राधा की यात्रा प्रकृति इसी रूप के कारण सुखकारी रही है।[6]

यह प्रकृति मानवसंरक्षिका भी है[7]—रक्षित धर्म के समान रक्षित प्रकृति भी इस संसार में निश्चय ही सबकी दिन-रात रक्षा करती है।

"ऐसी विविधरूपा, सर्वोपयोगी सहचरी प्रकृति के प्रति मानव के भी कुछ कर्त्तव्य हैं, जिन्हें उसे निष्ठापूर्वक निर्वाह करना चाहिए।" यह संदेश देने में भी डॉ. हरिनारायण दीक्षित पीछे नहीं रहे हैं। आज के युग की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता **"प्रकृतिसंरक्षण"** के प्रति मानवमात्र को जागृत करने के लिए उन्होंने महाकाव्य में **"प्रकृतिपोषण"** नामक सम्पूर्ण सर्ग की रचना की है और उसमें **प्रकृति प्रदूषण को आत्मघात** सदृश बताया है[8]—जो अदूरदर्शी,

1. राधा. 6/56
2. वही; 7/174-175
3. वही; 3/49
4. वही; 12/7-11
5. वही; 11/1-6, 14-16, 26, 33, 34, 36
6. वही; 9/40-59
7. वही; 13/19-21
8. वही; 13/10-12, 16, 22, 23, 35, 37, 46, 49, 56

बुद्धिहीन लोग प्रकृति के सन्तुलन को बिगाड़ रहे हैं, वे मूर्ख पेड़ पर चढ़कर उसी डाल को काट रहे हैं, जिस पर बैठे हैं। डॉ. दीक्षित ने प्रकृतिप्रदूषण से होने वाली हानियों एवं प्रकोप जैसे बाढ़, सूखा, भूकम्प, उष्णता में वृद्धि उर्वरता का विविध रोग अभाव आदि का उल्लेख से चिन्ता व्यक्त की है तथा उसके प्रति सचेत किया है।[1]

अतएव इसके उपाय हेतु इन्होंने समाज की **प्रकृतिसंरक्षण हेतु प्रेरित** किया है[2] और लोगों को प्रकृति का इस प्रकार उपयोग करना चाहिए, जिससे वह विकृत, असन्तुलित, प्रदूषित न हो क्योंकि प्रकृति के सुरक्षित रहने पर ही संसार सुरक्षित और सुखदायक रह सकेगा। उन्होंने जलसंरक्षण[3] और वायुशद्धि[4] पर विशेष बल दिया है।

इस प्रकार डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने मात्र प्रकृति के स्वरूप का चित्रण कर कवि परम्परा का निर्वाह ही नहीं किया अपितु समयानुरूप प्रकृति संरक्षण का उपदेश देकर महाकाव्य के प्रकृतिचित्रण का साभिप्राय और सार्थक भी बनाया है और साहित्यकार होने के नाते अपने दायित्व का भी निर्वाह किया है।

❑❑❑

1. राधा. 13/24-35, 38, 47-49
2. वही; 13/50-55
3. वही; 13/36, 39, 40-42
4. वही; 13/43-49